International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

गुप्त कालीन स्थापत्य में वैष्णव धर्म

Dr. Somesh Kumar Singh

Department of History, SCRS Govt. College, Sawai Madhopur, Rajasthan, India

सार: गुप्त राजवंश या गुप्त साम्राज्य (ल. 240/275–550 इस्वी) प्राचीन भारत का एक भारतीय साम्राज्य था। जिसने लगभग संपूर्ण उत्तर भारत पर शासन किया।[4] इतिहासकारों द्वारा इस अवधि को भारत का स्वर्ण युग माना जाता है।

मौर्य वंश व शुंग वंश के पतन के बाद दीर्घकाल में हर्ष तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। कुषाण एवं सातवाहनों ने राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया। मौर्योत्तर काल के उपरान्त तीसरी शताब्दी ईस्वी में तीन राजवंशो का उदय हुआ जिसमें मध्य भारत में नाग शक्ति, दक्षिण में वाकाटक तथा पूर्वी में गुप्त वंश प्रमुख हैं। मौर्य वंश के पतन के पश्चात नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुनः स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है।गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार में था।साम्राज्य के पहले शासक चंद्र गुप्त प्रथम थे, जिन्होंने विवाह द्वारा लिच्छवी के साथ गुप्त को एकजुट किया। उनके पुत्र प्रसिद्ध समुद्रगुप्त ने विजय के माध्यम से साम्राज्य का विस्तार किया। ऐसा लगता है कि उनके अभियानों ने उत्तरी और पूर्वी भारत में गुप्त शक्ति का विस्तार किया और मध्य भारत और गंगा घाटी के कुलीन राजाओं और उन क्षेत्रों को वस्तुतः समाप्त कर दिया जो तब गुप्त वंश के प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण में आ गए थे । साम्राज्य के तीसरे शासक चंद्रगुप्त द्वितीय (या विक्रमादित्य, "शौर्य का सूर्य") उज्जैन तक साम्राज्य का विस्तार करने के लिए मनाया गया, लेकिन उनका शासनकाल सैन्य विजय की तुलना में सांस्कृतिक और बौद्धिक उपलब्धियों से अधिक जुड़ा हुआ था। उनके उत्तराधिकारी- कुमारागुप्त, स्कंदगुप्त और अन्य - ने धुनास (हेफ्थालवासियों की एक शाखा) पर आक्रमण के साथ साम्राज्य के क्रमिक निधन को देखा। 6 वीं शताब्दी के मध्य तक, जब राजवंश का अंत हुआ, तो राज्य एक छोटे आकार में घट गया था।

I. परिचय

गुप्त वंश की उत्पत्ति

गुप्त सामाज्य का उदय तीसरी शताब्दी के अन्त में प्रयाग के निकट कौशाम्बी में हुआ था। जिस प्राचीनतम गुप्त राजा के बारे में पता चला है वो है श्रीगुप्त। हालांकि प्रभावती गुप्त के पूना ताम्रपत्र अभिलेख में इसे 'आदिराज' कहकर सम्बोधित किया गया है। पुराणों में ये कहा गया है कि आरंभिक गुप्त राजाओं का साम्राज्य गंगा द्रोणी, प्रयाग, साकेत (अयोध्या) तथा मगध में फैला था। श्रीगुप्त के समय में महाराजा की उपाधि सामन्तों को प्रदान की जाती थी, अतः श्रीगुप्त किसी के अधीन शासक था। प्रसिद्ध इतिहासकार के. पी. जायसवाल के अनुसार श्रीगुप्त भारशिवों के अधीन छोटे से राज्य प्रयाग का शासक था। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार मगध के मृग शिखावन में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था। तथा मन्दिर के व्यय में २४ गाँव को दान दिये थे। चंद्रगुप्त द्वितीय की बेटी, गुप्त राजकुमारी प्रभावती-गुप्ता के पुणे और रिद्धपुर शिलालेखों में कहा गया है कि वह धारणा गोत्र से संबंधित थीं।[7][8]

कुछ इतिहासकार, जैसे कि ए. एस. अल्टेकर ने सिद्धांत दिया है कि गुप्त मूल रूप से वैश्य थे, क्योंकि कुछ प्राचीन भारतीय ग्रंथ (जैसे विष्णु पुराण) इसके सदस्यों के लिए "गुप्त" वैश्य वर्ण का उपनाम लिखते हैं।[9][10]

इस सिद्धांत के आलोचकों का तर्क है कि:

- गुप्त प्रत्यय गुप्तकाल के पहले , बाद और उसके दौरान कई गैर-वैश्य राजाओं के नाम में आता है, और इसे गुप्त राजाओं के वैश्य होने का ठोस प्रमाण नहीं माना जा सकता है।[11][12][13]

घटोत्कच

श्रीगुप्त के बाद उसका पुत्र घटोत्कच गद्दी पर बैठा। २८० ई. से 320 ई. तक गुप्त साम्राज्य का शासक बना रहा। वह शाही परिवार का वंशज रहा हो सकता है, प्रभावती गुप्त के पूना एवं रिद्धपुर ताम्रपत्र अभिलेखों में घटोत्कच को गुप्त वंश का प्रथम राजा बताया गया है,इसका राज्य सम्भवतः मगध के आस-पास तक ही सीमित था।[1,2,3]

चंद्रगुप्त प्रथम

सन् ३२० में चन्द्रगुप्त प्रथम अपने पिता घटोत्कच के बाद राजा बना। चन्द्रगुप्त गुप्त वंशावली में पहला स्वतन्त्र शासक था। इसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। चंद्रगुप्त ने में लिच्छवि संघ को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसका शासन काल (320 ई. से 335 ई. तक) था। चंद्रगुप्त ने गुप्त संवत् की स्थापना 319–320 ई. में की थी। गुप्त संवत् तथा शक संवत् के मध्य 241 वर्षों का अंतर था।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

पुराणों तथा हरिषेण लिखित प्रयाग प्रशस्ति से चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य के विस्तार के विषय में जानकारी मिलती है। चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों के सहयोग और समर्थन पाने के लिए उनकी राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह किया। स्मिथ के अनुसार इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों का राज्य प्राप्त कर लिया तथा मगध उसके सीमावर्ती क्षेत्र में आ गया। कुमार देवी के साथ विवाह-सम्बन्ध करके चन्द्रगुप्त प्रथम ने वैशाली राज्य प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त ने जो सिक्के चलाए उसमें चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के चित्र अंकित होते थे। लिच्छवियों के दूसरे राज्य नेपाल के राज्य को उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने मिलाया।

हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार अपने महान पूर्ववर्ती शासक बिम्बिसार की भाँति चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह कर द्वितीय मगध साम्राज्य की स्थापना की। उसने विवाह की स्मृति में राजा-रानी प्रकार के सिक्कों का चलन करवाया। इस प्रकार स्पष्ट है कि लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्य को राजनैतिक दृष्टि से सुदृढ़ तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बना दिया। राय चौधरी के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम ने कौशाम्बी तथा कौशल के महाराजाओं को जीतकर अपने राज्य में मिलाया तथा साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित की।

समुद्रगुप्त
चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद 335 ई. में उसका तथा कुमारदेवी का पुत्र समुद्रगुप्त राजगद्दी पर बैठा। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास में महानतम शासकों के रूप में वह नामित किया जाता है। इन्हें परक्रमांक कहा गया है। समुद्रगुप्त का शासनकाल राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्त साम्राज्य के उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। समुद्रगुप्त ने "महाराजाधिराज" की उपाधि धारण की। वे स्वयं को "लिच्छवि दौहित्र" कहे जाने पर गर्व का अनुभव करते थे।

श्रीलंका के शासक मेघवर्मन ने बोधगया में एक बौध्द विहार के निर्माण की अनुमति पाने हेतू अपना राजदूत समुद्रगुप्त के पास भेजा। समुद्रगुप्त एक असाधारण सैनिक योग्यता वाला महान विजित सम्राट था। विन्सेंट स्मिथ ने इन्हें नेपोलियन की उपाधि दी। उसका सबसे महत्वपूर्ण अभियान दक्षिण की तरफ़ (दक्षिणापथ) था। इसमें उसके बारह विजयों का उल्लेख मिलता है।

समुद्रगुप्त एक अच्छा राजा होने के अतिरिक्त एक अच्छा कवि तथा संगीतज्ञ भी था। उसे कला मर्मज्ञ भी माना जाता है। उसका देहान्त 380 ई. में हुआ जिसके बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय राजा बना। यह उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या का उदार संरक्षक था। उसे कविराज भी कहा गया है। वह महान संगीतज्ञ था जिसे वीणा वादन का शौक था। इसने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को अपना मन्त्री नियुक्त किया था।

हरिषेण, समुद्रगुप्त का मन्त्री एवं दरबारी कवि था। हरिषेण द्वारा रचित प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के राज्यारोहण, विजय, साम्राज्य विस्तार के सम्बन्ध में सटीक जानकारी प्राप्त होती है। काव्यालंकार सूत्र में समुद्रगुप्त का नाम 'चन्द्रप्रकाश' मिलता है। उसने उदार, दानशील, असहायी तथा अनाथों को अपना आश्रय दिया। वैदिक धर्म के अनुसार इन्हें धर्म व प्राचीर बन्ध यानी धर्म की प्राचीर कहा गया है।

समुद्रगुप्त का साम्राज्य–
समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान, सिन्ध तथा गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तर भारत इसमें सम्मिलित थे। दक्षिणापथ के शासक तथा पश्चिमोत्तर भारत की विदेशी शक्तियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं। समुद्रगुप्त ने सैन्य विजय के उपरांत एक अश्वमेध यज्ञ करवाया।

समुद्रगुप्त का साम्राज्य

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त की दिग्विजय का ध्येय "धरणि बंध" (भूमंडल को बांधना) था। इन्होने उत्तर भारत के नो शासकों को पराजित किया जिनमें अच्युत, नागसेन तथा गणपतिनाथ प्रमुख थे।

समुद्रगुप्त के काल में सदियों के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण तथा विदेशी शक्तियों के आधिपत्य के बाद आर्यावर्त पुनः नैतिक, बौद्धिक तथा भौतिक उन्नति की चोटी पर जा पहुँचा था।

रामगुप्त[4,5,6]

समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त सम्राट बना, लेकिन इसके राजा बनने में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है।

विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे- रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त। रामगुप्त बड़ा होने के कारण पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा, लेकिन वह निर्बल एवं कायर था। वह शकों द्वारा पराजित हुआ और अत्यन्त अपमानजनक सन्धि कर अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शकराज को भेंट में दे दिया था, लेकिन उसका छोटा भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय बड़ा ही वीर एवं स्वाभिमानी व्यक्ति था। वह छद्म भेष में ध्रुवस्वामिनी के वेश में शकराज के पास गया। फलतः रामगुप्त निन्दनीय होता गया। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर दी। उसकी पत्नी से विवाह कर लिया और गुप्त वंश का शासक बन बैठा।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मुद्रा

चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७५ ई. में सिंहासन पर आसीन हुआ। वह समुद्रगुप्त की प्रधान महिषी दत्तदेवी से हुआ था। वह विक्रमादित्य के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। उसने ३७५ से ४१५ ई. तक (४० वर्ष) शासन किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों पर अपनी विजय हासिल की जिसके बाद गुप्त साम्राज्य एक शक्तिशाली राज्य बन गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में क्षेत्रीय तथा सांस्कृतिक विस्तार हुआ।

हालांकि चन्द्रगुप्त द्वितीय का अन्य नाम देव, देवगुप्त, देवराज, देवश्री आदि हैं। उसने विक्रमांक, विक्रमादित्य, परम भागवत आदि उपाधियाँ धारण की। उसने नागवंश, वाकाटक और कदम्ब राजवंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने नाग राजकुमारी कुबेर नागा के साथ विवाह किया जिससे एक कन्या प्रभावती गुप्त पैदा हुई। वाकाटकों का सहयोग पाने के लिए चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। उसने ऐसा संभवतः इसलिए किया कि शकों पर आक्रमण करने से पहले दक्कन में उसको समर्थन हासिल हो जाए। उसने प्रभावती गुप्त के सहयोग से गुजरात और काठियावाड़ की विजय प्राप्त की। वाकाटकों और गुप्तों की सम्मिलित शक्ति से शकों का उन्मूलन किया।

कदम्ब राजवंश का शासन कुंतल (कर्नाटक) में था। चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदम्ब वंश में हुआ।

शक उस समय गुजरात तथा मालवा के प्रदेशों पर राज कर रहे थे। शकों पर विजय के बाद उसका साम्राज्य न केवल मजबूत बना बल्कि उसका पश्चिमी समुद्र पत्तनों पर अधिपत्य भी स्थापित हुआ। इस विजय के पश्चात उज्जैन गुप्त साम्राज्य की राजधानी बना।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल ब्राह्मण धर्म के चरमोत्कर्ष का काल था। इनका प्रधान सचिव वीरेन (शैव) तथा सेनापति अम्रकार्दव (बौद्ध) था।

विद्वानों को इसमें संदेह है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा विक्रमादित्य एक ही व्यक्ति थे। उसके शासनकाल में चीनी बौद्ध यात्री फाहियान ने 399 ईस्वी से 414 ईस्वी तक भारत की यात्रा की। उसने भारत का वर्णन एक सुखी और समृद्ध देश के रूप में किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल को स्वर्ण युग भी कहा गया है।

चन्द्रगुप्त एक महान प्रतापी सम्राट था। उसने अपने साम्राज्य का और विस्तार किया।

- शक विजय- पश्चिम में शक क्षत्रप शक्तिशाली साम्राज्य था। ये गुप्त राजाओं को हमेशा परेशान करते थे। शक गुजरात के काठियावाड़ तथा पश्चिमी मालवा पर राज्य करते थे। ३८९ ई. ४१२ ई. के मध्य चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकों पर आक्रमण कर

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

विजित किया। शकों पर विजय के उपलक्ष्य में रजत मुद्राओं का प्रचलन करवाया था तथा "शकारि" उपाधि धारण की एवं व्याघ्र शैली के सिक्के चलाए।

- वाहीक विजय- महाशैली स्तम्भ लेख के अनुसार चन्द्र गुप्त द्वितीय ने सिन्धु के पाँच मुखों को पार कर वाहिकों पर विजय प्राप्त की थी। वाहिकों का समीकरण कुषाणों से किया गया है, पंजाब का वह भाग जो व्यास का निकटवर्ती भाग है।
- बंगाल विजय- महाशैली स्तम्भ लेख के अनुसार यह ज्ञात होता है कि चन्द्र गुप्त द्वितीय ने बंगाल के शासकों के संघ को परास्त किया था।
- गणराज्यों पर विजय- पश्चिमोत्तर भारत के अनेक गणराज्यों द्वारा समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात्अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी गई थी।

परिणामतः चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा इन गणरज्यों को पुनः विजित कर गुप्त साम्राज्य में विलीन किया गया। अपनी विजयों के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त द्वितीय ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसका साम्राज्य पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल तक तथा उत्तर में हिमालय की तापघटी से दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तृत था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में उसकी प्रथम राजधानी पाटलिपुत्र और द्वितीय राजधानी उज्जयिनी थी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल कला-साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। उसके दरबार में विद्वानों एवं कलाकारों को आश्रय प्राप्त था। उसके दरबार में नौ रत्न थे- कालिदास, धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकर्पर, वाराहमिहिर, वररुचि, आर्यभट्ट, विशाखदत्त, शूद्रक, ब्रम्हगुप्त, विष्णुशर्मा और भास्कराचार्य उल्लेखनीय थे। ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मसिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे बाद में न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नाम से प्रतिपादित किया।

कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु के बाद सन् 415 में सत्तारूढ़ हुआ। अपने दादा समुद्रगुप्त की तरह उसने भी अश्वमेघ यज्ञ के सिक्के जारी किये। कुमारगुप्त ने चालीस वर्षों तक शासन किया।

कुमारगुप्त प्रथम (४१५ ई. से ४५५ ई.)- चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् ४१५ ई. में उसका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम सिंहासन पर बैठा। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी ध्रुवदेवी से उत्पन्न सबसे बड़ा पुत्र था, जबकि गोविन्दगुप्त उसका छोटा भाई था। यह कुमारगुप्त के बसाठ (वैशाली) का राज्यपाल था।

कुमारगुप्त प्रथम का शासन शान्ति और सुव्यवस्था का काल था। साम्राज्य की उन्नति के पराकाष्ठा पर था। इसने अपने साम्राज्य का अधिक संगठित और सुशोभित बनाये रखा। गुप्त सेना ने पुष्यमित्रों को बुरी तरह परास्त किया था। कुमारगुप्त ने अपने विशाल साम्राज्य की पूरी तरह रक्षा की जो उत्तर में हिमालय से दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक विस्तृत था।

कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों या मुद्राओं से ज्ञात होता है कि उसने अनेक उपाधियाँ धारण कीं। उसने महेन्द्र कुमार, श्री महेन्द्र, श्री महेन्द्र सिंह, महेन्द्रा दिव्य आदि उपाधि धारण की थी। मिलरक्द अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के साम्राज्य में चतुर्दिक सुख एवं शान्ति का वातावरण विद्यमान था। कुमारगुप्त प्रथम स्वयं वैष्णव धर्मानुयायी था, किन्तु उसने धर्म सहिष्णुता की नीति का पालन किया। गुप्त शासकों में सर्वाधिक अभिलेख कुमारगुप्त के ही प्राप्त हुए हैं। उसने अधिकाधिक संक्या में मयूर आकृति की रजत मुद्राएं प्रचलित की थीं। उसी के शासनकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी।

कुमारगुप्त केे समय मे हूणों का हमला हुआ।[7,8,9]

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल की प्रमुख घटनओं का निम्न विवरण है-

- पुष्यमित्र से युद्ध- भीतरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के शासनकाल के अन्तिम क्षण में शान्ति नहीं थी। इस काल में पुष्यमित्र ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस युद्ध का संचालन कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने किया था। उसने पुष्यमित्र को युद्ध में परास्त किया।
- दक्षिणी विजय अभियान- कुछ इतिहास के विद्वानों के मतानुसार कुमारगुप्त ने भी समुद्रगुप्त के समान दक्षिण भारत का विजय अभियान चलाया था, लेकिन सतारा जिले से प्राप्त अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है।
- अश्वमेध यज्ञ- सतारा जिले से प्राप्त १,३९५ मुद्राओं व लेकर पुर से १३ मुद्राओं के सहारे से अश्वमेध यज्ञ करने की पुष्टि होती है।

धर्म

श्रीगुप्त ने गया में चीनी यात्रियों के लिए एक मंदिर बनवाया था जिसका उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग ने ५०० वर्षों बाद सन् ६७१ से सन् ६९५ के बीच में किया।[14]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन बुद्ध गुप्त काल से, 5वीं शताब्दी ई.

कुमारगुप्त एक (455 ई) कहा जाता है कि नालंदा की स्थापना की। आधुनिक आनुवांशिक अध्ययन इस बात का संकेत देते हैं कि गुप्त युग में ही भारतीय वर्ण समूहों ने विवाह नहीं किया (अंतरजातीय विवाह की प्रथा शुरू की) और स्वयं को अंतःसमूही बना लिया।[15]

गुप्त शासकों ने विशेष रूप से बौद्ध धर्म को प्रोत्साहित किया है। नरसिंहगुप्त बालादित्य (ल. 495–?), आधुनिक लेखक परमार्थ के अनुसार, महायानी दार्शनिक वसुबंधु के प्रभाव में पालन किया गया था।[16] उन्होंने नालंदा में एक संघाराम और एक 300 फीट (91 मी°) ऊंचा विहार बनाया, जिसमें एक बुद्ध मूर्ति होती थी, जिसकी सदृशता जूआंजांग के अनुसार "बोधिवृक्ष" के नीचे बने "महाविहार" के समान थी। मंजुश्रीमूलकल्प (ल. 800 ई) के अनुसार, राजा नरसिंहगुप्त बौद्ध संन्यासी बन गए, और ध्यान के माध्यम से जगह छोड़ दी (बौद्ध ध्यान में)। चीनी संन्यासी जुआंजांग ने भी दर्शाया कि नरसिंहगुप्त बालादित्य के पुत्र, वज्र, जिन्होंने एक संघाराम का आदेश दिया, "धर्म में दृढ़ विश्वास रखते थे"।[17]:45 [18]:330

लाल बलुआ पत्थर में बुद्ध, मथुरा की कला, गुप्त काल लगभग 5वीं शताब्दी ई.पू. मथुरा संग्रहालय[19]खड़े बुद्ध की दूसरी मूर्ति (खंड) पर बौद्ध भक्त, "बुद्धगुप्त के शासनकाल में 157 में अभयमित्र का उपहार" (477 ई.पू.) अंकित है। सारनाथ संग्रहालय.

नालंदा विश्वविद्यालय

माना जाता है कि नालंदा विश्वविद्यालय का निर्माण गुप्त राजा कुमारगुप्ता द्वारा किया गया था । नोलानाडा को दुनिया का पहला अंतरराष्ट्रीय निवासी विश्वविद्यालय माना जाता है नालंदा संस्कृत शब्द 'नालम् + दा' से बना है। संस्कृत में 'नालम' का अर्थ 'कमल' होता है। कमल ज्ञान का प्रतीक है। नालम् + दा यानी कमल देने वाली, ज्ञान देने वाली। कालक्रम से यहाँ महाविहार की स्थापना के बाद इसका नाम 'नालंदा महाविहार' रखा गया।

स्कन्दगुप्त

पुष्यमित्र के आक्रमण के समय ही गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम की ४५५ ई. में मृत्यु हो गयी थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसने सर्वप्रथम पुष्यमित्र को पराजित किया और उस पर विजय प्राप्त की। हालाँकि सैन्य अभियानों में वो पहले से ही शामिल रहता था। मन्दसौर शिलालेख से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाइयों का फायदा उठाते हुए वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन ने मालवा पर अधिकार कर लिया परन्तु स्कन्दगुप्त ने वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन को पराजित कर दिया।

स्कंदगुप्त ने 12 वर्ष तक शासन किया। स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य, क्रमादित्य आदि उपाधियाँ धारण कीं। कहोम अभिलेख में स्कन्दगुप्त को शक्रोपन कहा गया है।

स्कन्दगुप्त का शासन बड़ा उदार था जिसमें प्रजा पूर्णरूपेण सुखी और समृद्ध थी। स्कन्दगुप्त एक अत्यन्त लोकोपकारी शासक था जिसे अपनी प्रजा के सुख-दुःख की निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी। जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में भारी वर्षा के कारण सुदर्शन झील का बाँध टूट गया था उसने दो माह के भीतर अतुल धन का व्यय करके पत्थरों की जड़ाई द्वारा उस झील के बाँध का पुनर्निर्माण करवा दिया। इस झील के पुनरुद्धार का कार्य सौराष्ट्र के गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित को सौंपा गया।

उसके शासनकाल में संघर्षों की भरमार लगी रही। उसको सबसे अधिक परेशान मध्य एशियाई हूण लोगो ने किया। हूण एक बहुत ही दुर्दांत कबीले थे तथा उनके साम्राज्य से पश्चिम में रोमन साम्राज्य को भी खतरा बना हुआ था। श्वेत हूणों के नाम से पुकारे जाने वाली उनकी एक शाखा ने हिंदुकुश पर्वत को पार करके फ़ारस तथा भारत की ओर रुख किया। उन्होंने पहले गांधार पर कब्जा कर

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

लिया और फिर गुप्त साम्राज्य को चुनौती दी। पर स्कंदगुप्त ने उन्हे करारी शिकस्त दी और हूणों ने अगले 50 वर्षों तक अपने को भारत से दूर रखा। स्कंदगुप्त ने मौर्यकाल में बनी सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार भी करवाया।

गोविन्दगुप्त स्कन्दगुप्त का छोटा चाचा था, जो मालवा के गवर्नर पद पर नियुक्त था। इसने स्कन्दगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। स्कन्दगुप्त ने इस विद्रोह का दमन किया।

स्कन्दगुप्त राजवंश का आखिरी शक्तिशाली सम्राट था। ४६७ ई. उसका निधन हो गया।

इण्डोनेशिया के जावा में स्थित बोरोबुदुर ; इस भवन की डिजाइन पर गुप्त स्थापत्य कला का प्रभाव देखा जा सकता है।

पतन

स्कंदगुप्त की मृत्य सन् 467 में हुई। हंलांकि गुप्त वंश का अस्तित्व इसके 100 वर्षों बाद तक बना रहा पर यह धीरे धीरे कमजोर होता चला गया।

स्कन्दगुप्त के बाद इस साम्राज्य में निम्नलिखित प्रमुख राजा हुए:

पुरुगुप्त

यह कुमारगुप्त का पुत्र था और स्कन्दगुप्त का सौतेला भाई था। स्कन्दगुप्त का कोई अपना पुत्र नहीं था। पुरुगुप्त बुढ़ापा अवस्था में राजसिंहासन पर बैठा था फलतः वह सुचारु रूप से शासन को नहीं चला पाया और साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया।

कुमारगुप्त द्वितीय

पुरुगुप्त का उत्तराधिकारी कुमारगुप्त द्वितीय हुआ। सारनाथ लेख में इसका समय ४४५ ई. अंकित है।

बुधगुप्त

कुमारगुप्त द्वितीय के बाद बुधगुप्त शासक बना जो नालन्दा से प्राप्त मुहर के अनुसार पुरुगुप्त का पुत्र था। उसकी माँ चन्द्रदेवी था। उसने ४७५ ई. से ४९५ ई. तक शासन किया। ह्वेनसांग के अनुसार वह बौद्ध मत अनुयायी था। उसने नालन्दा बौद्ध महाविहार को काफी धन दिया था।

नरसिंहगुप्त बालादित्य

बुधगुप्त की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई नरसिंहगुप्त शासक बना। इस समय गुप्त साम्राज्य तीन भागों क्रमशः मगध, मालवा तथा बंगाल में बँट गया। मगध में नरसिंहगुप्त, मालवा में भानुगुप्त, बिहार में तथा बंगाल क्षेत्र में वैन्यगुप्त ने अपना स्वतन्त्र शसन स्थापित किया। नरसिंहगुप्त तीनों में सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था। हूणों का कुरु एवं अत्याचारी आक्रमण मिहिरकुल को पराजित कर दिया था। नालन्दा मुद्रा लेख में नरसिंहगुप्त को परम भागवत कहा गया है। भानुगुप्त के समय सती प्रथा का प्रथम साक्ष्य 510 ई. के ऐरण लेख में मिलता है।[10,11,12]

कुमारगुप्त तृतीय

नरसिंहगुप्त के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त तृतीय मगध के सिंहासन पर बैठा। वह २४ वाँ शासक बना। कुमारगुप्त तृतीय गुप्त वंश का अन्तिम शासक था।

दामोदरगुप्त

कुमरगुप्त के निधन के बाद उसका पुत्र दामोदरगुप्त राजा बना। ईशान वर्मा का पुत्र सर्ववर्मा उसका प्रमुख प्रतिद्वन्दी मौखरि शासक था। सर्ववर्मा ने अपने पिता की पराजय का बदला लेने हेतु युद्ध किया। इस युद्ध में दामोदरगुप्त की हार हुई। यह युद्ध ५८२ ई. के आस-पस हुआ था।

महासेनगुप्त

दामोदरगुप्त के बाद उसका पुत्र महासेनगुप्त शासक बना था। उसने मौखरि नरेश अवन्ति वर्मा की अधीनता स्वीकार कर ली। महासेनगुप्त ने असम नरेश सुस्थित वर्मन को ब्राह्मण नदी के तट पर पराजित किया। अफसढ़ लेख के अनुसार महासेनगुप्त बहुत पराक्रमी था।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

देवगुप्त

महासेनगुप्त के बाद उसका पुत्र देवगुप्त मलवा का शासक बना। उसके दो सौतेले भाई कुमारगुप्त और माधवगुप्त थे। देवगुप्त ने गौड़ शासक शशांक के सहयोग से कन्नौज के मौखरि राज्य पर आक्रमण किया और गृह वर्मा की हत्या कर दी। प्रभाकर वर्धन के बड़े पुत्र राज्यवर्धन ने शीघ्र ही देवगुप्त पर आक्रमण करके उसे मार डाल्श।

माधवगुप्त

हर्षवर्धन के समय में माधवगुप्त मगध के सामन्त के रूप में शासन करता था। वह हर्ष का घनिष्ठ मित्र और विश्वासपात्र था। हर्ष जब शशांक को दण्डित करने हेतु गया तो माधवगुप्त साथ गया था। उसने ६५० ई. तक शासन किया। हर्ष की मृत्यु के उपरान्त उत्तर भारत में अराजकता फैली तो माधवगुप्त ने भी अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित किया।

गुप्त साम्राज्य का ५५० ई. में पतन हो गया। बुद्धगुप्त के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले और हूणों के आक्रमण का सामना नहीं कर सके। हूणों ने सन् 512 में तोरमाण के नेतृत्व में फिर हमला किया और ग्वालियर तथा मालवा तक के एक बड़े क्षेत्र पर अधिपत्य कायम कर लिया। इसके बाद सन् 606 में हर्ष का शासन आने के पहले तक आराजकता छाई रही। हूण ज्यादा समय तक शासन न कर सके।

उत्तर गुप्त राजवंश

गुप्त वंश के पतन के बाद भारतीय राजनीति में विकेन्द्रीकरण एवं अनिश्चितता का माहौल उत्पन्न हो गया। अनेक स्थानीय सामन्तों एवं शासकों ने साम्राज्य के विस्तृत क्षेत्रों में अलग-अलग छोटे-छोटे राजवंशों की स्थापना कर ली। इसमें एक था- उत्तर गुप्त राजवंश। इस राजवंश ने करीब दो शताब्दियों तक शासन किया। इस वंश के लेखों में चक्रवर्ती गुप्त राजाओं का उल्लेख नहीं है।

परवर्ती गुप्त वंश के संस्थापक कृष्णगुप्त ने (५१० ई. ५२१ ई.) स्थापना की। अफसढ़ लेख के अनुसार मगध उसका मूल स्थान था, जबकि विद्वानों ने उनका मूल स्थान मालवा कहा गया है। उसका उत्तराधिकारी हर्षगुप्त हुआ है। उत्तर गुप्त वंश के तीन शासकों ने शासन किया। तीनों शासकों ने मौखरि वंश से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रहा।

कुमारगुप्त उत्तर गुप्त वंश का चौथा राजा था जो जीवित गुप्त का पुत्र था। यह शासक अत्यन्त शक्तिशाली एवं महत्वाकांक्षी था। इसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसका प्रतिद्वन्दी मौखरि नरेश ईशान वर्मा समान रूप से महत्वाकांक्षी शासक था। इस समय प्रयाग में पुण्यार्जन हेतु प्राणान्त करने की प्रथा प्रचलित थी। हांग गांगेय देव जैसे शसकों का अनुसरण करते हुए कुमार गुप्त ने प्रयाग जाकर स्वर्ग प्राप्ति की लालसा से अपने जीवन का त्याग किया।

गुप्तकालीन स्थापत्य

गुप्त काल में कला, विज्ञान और साहित्य ने अत्यधिक समृद्धि प्राप्त की। इस काल के साथ ही भारत ने मंदिर वास्तुकला एवं मूर्तिकला के उत्कृष्ट काल में प्रवेश किया। शताब्दियों के प्रयास से कला की तकनीकों को संपूर्णता मिली। गुप्त काल के पूर्व मन्दिर स्थायी सामाग्रियों से नहीं बनते थे। ईंट एवं पत्थर जैसी स्थायी सामग्रियों पर मंदिरों का निर्माण इसी काल की घटना है। इस काल के प्रमुख मंदिर हैं- तिगवा का विष्णु मंदिर (जबलपुर, मध्य प्रदेश), भूमरा का शिव मंदिर (नागोद, मध्य प्रदेश), नचना कुठार का पार्वती मंदिर (मध्य प्रदेश), देवगढ़ का दशवतार मंदिर (झाँसी, उत्तर प्रदेश) तथा ईंटों से निर्मित भीतरगाँव का लक्ष्मण मंदिर (कानपुर, उत्तर प्रदेश) आदि।

गुप्तकालीन मंदिरों की विशेषताएँ

गुप्तकालीन मंदिरों को ऊँचे चबूतरों पर बनाया जाता था जिनमें ईंट तथा पत्थर जैसी स्थायी सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था। आरंभिक गुप्तकालीन मंदिरों में शिखर नहीं मिलते हैं। इस काल में मदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरे पर किया जाता था जिस पर चढ़ने के लिये चारों ओर से सीढ़ियाँ बनीं होती थी तथा मन्दिरों की छत सपाट होती थी। मन्दिरों का गर्भगृह बहुत साधारण होता था। गर्भगृह में देवताओं को स्थापित किया जाता था। प्रारंभिक गुप्त मंदिरों में अलंकरण नहीं मिलता है, लेकिन बाद में स्तम्भों, मन्दिर के दीवार के बाहरी भागों, चौखट आदि पर मूर्तियों द्वारा अलंकरण किया गया है। भीतरगाँव (कानपुर) स्थित विष्णु मंदिर नक्काशीदार है। गुप्तकालीन मन्दिरों के प्रवेशद्वार पर मकरवाहिनी गंगा, यमुना, शंख व पद्म की आकृतियाँ बनी हैं। गुप्तकालीन मंदिरकला का सर्वोत्तम उदाहरण देवगढ़ का दशावतार मंदिर है जिसमें गुप्त स्थापत्य कला अपनी परिपक्व अवस्था में है। यह मंदिर सुंदर मूर्तियों, उड़ते हुए पक्षियों, पवित्र वृक्ष, स्वास्तिक एवं फूल-पत्तियों द्वारा अलंकृत है। गुप्तकालीन मंदिरों की विषय-वस्तु रामायण, महाभारत और पुराणों से ली गई है।

शासकों की सूची

शासक (महाराजाधिराज)		शासन (ईस्वी)
श्रीगुप्त प्रथम		ल. तीसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में
घटोत्कच		280/290–319 ईस्वी

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

चन्द्रगुप्त प्रथम		319–335 ईस्वी
समुद्रगुप्त		335–375 ईस्वी
रामगुप्त		375 ईस्वी
चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य		375–415 ईस्वी
कुमारगुप्त प्रथम		415–455 ईस्वी
स्कन्दगुप्त		455–467 ईस्वी
पुरुगुप्त		467–473 ईस्वी
कुमारगुप्त द्वितीय		473–476 ईस्वी
बुद्धगुप्त		476–495 ईस्वी
नरसिंहगुप्त बालादित्य		495–530 ईस्वी
कुमारगुप्त तृतीय		530–540 ईस्वी
विष्णुगुप्त		540–550 ईस्वी

II. विचार-विमर्श

वैष्णव धर्म

यह गुप्त शासकों का व्यक्तिगत धर्म था। अनेक गुप्त राजाओं ने 'परामभागवत्' की उपाधि धारण की। इन राजाओं ने अपनी राजाज्ञाएं गरुड़ध्वज से अंकित करवायीं। चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं समुद्रगुप्त द्वारा जारी किए गए सिक्कों पर विष्णु के वाहन गरुड़ की आकृति

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

खुदी मिली है। इसके अतिरिक्त वैष्णव धर्म के कुछ अन्य चिह्न जैसे शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी का अंकन भी गुप्तकालीन सिक्कों पर मिलता है। गुप्तकालीन महत्त्वपूर्ण अभिलेख स्कन्दगुप्त का 'जूनागढ़' एवं बुधगुप्त का 'एरण अभिलेख' विष्णु स्तुति से ही प्रारम्भ हुए हैं। चक्रपालित नाम से गुप्तकालीन कर्मचारी ने विष्णु के एक मंदिर का निर्माण करवाया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णुपद पर्वत के शिखर पर विष्णुध्वज की स्थापना की। गुप्तकालीन कुछ अभिलेखों ने विष्णु को 'मधुसूदन' कहा गया है। वैष्णव धर्म गुप्त काल में अपने चरमोंत्कर्ष पर थी। 'अवतारवाद' वैष्णव धर्म का प्रधान अंग था।

वैष्णव धर्म या 'वैष्णव सम्प्रदाय' का प्राचीन नाम 'भागवत धर्म' या 'पांचरात्र मत' है। इस सम्प्रदाय के प्रधान उपास्य देव वासुदेव हैं, जिन्हें छः गुणों ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, ऐश्वर्य और तेज से सम्पन्न होने के कारण भगवान या 'भगवत' कहा गया है और भगवत के उपासक 'भागवत' कहलाते हैं। इस सम्प्रदाय की पांचरात्र संज्ञा के सम्बन्ध में अनेक मत व्यक्त किये गये हैं। 'महाभारत'[2] के अनुसार चार वेदों और सांख्ययोग के समावेश के कारण यह नारायणीय महापनिषद पांचरात्र कहलाता है। 'नारद पांचरात्र' के अनुसार इसमें ब्रह्म, मुक्ति, भोग, योग और संसार–पाँच विषयों का 'रात्र' अर्थात ज्ञान होने के कारण यह पांचरात्र है। 'ईश्वरसंहिता', 'पाद्मतन्त', 'विष्णुसंहिता' और 'परमसंहिता' ने भी इसकी भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। 'शतपथ ब्राह्मण'[3] के अनुसार सूत्र की पाँच रातों में इस धर्म की व्याख्या की गयी थी, इस कारण इसका नाम पांचरात्र पड़ा। इस धर्म के 'नारायणीय', ऐकान्तिक' और 'सात्वत' नाम भी प्रचलित रहे हैं।

प्रारम्भ

यह अनुमान है कि लगभग 600 ई.पू. जिस समय ब्राह्मण ग्रन्थों के हिंसाप्रधान यज्ञों की प्रतिक्रिया में बौद्ध-जैन सुधार-आन्दोलन हो रहे थे, उससे भी पहले से अपेक्षाकृत शान्त, किन्तु स्थिर ढंग से एक उपासना प्रधान सम्प्रदाय विकसित हो रहा था, जो प्रारम्भ से वृष्णि-वंशीय क्षत्रियों की सात्वत नामक जाति में सीमित था। वैदिक परम्परा का इसने सीधा विरोध नहीं किया, प्रत्युत अपने अहिंसाप्रधान धर्म को वेद-विहित ही बताया। इस कारण कि उसकी प्रवृत्ति बौद्ध और जैन सुधार-आन्दोलनों की भाँति खण्डनात्मक और प्रबल उपचारात्मक नहीं थी, इस सम्प्रदाय की वैसी धूम नहीं मची। ई.पू. चौथी शती में पाणिनि की अष्टाध्यायी[4] के सूत्र से वासुदेव के उपासक का प्रमाण मिलता है। ई.पू. तीसरी-चौथी शती से पहली शती तक वासुदेवोपासना के अनेक प्रमाण प्राचीन साहित्य और पुरातत्त्व में मिले हैं।

प्रचलन

जैनों के सलाक पुरुषों में वासुदेव और बलदेव भी हैं तथा अरिष्टनेमि और वासुदेव के सम्बन्ध का भी उल्लेख प्राचीन जैन साहित्य में मिलता है। बौद्धजातकों (घत और महा उमग्ग) में वासुदेव की कथा कही गयी है। बौद्ध साहित्य के 'चुल्लनिद्देस' मे आजीवक, निगंठ, जटिल बलदेव आदि श्रावकों के साथ वासुदेव को पूजने वाले वासुदेवकों का भी उल्लेख हुआ है, जिससे सूचित होता है कि यह सम्प्रदाय तीसरी-चौथी शती ई.पू. में विद्यमान था। इसी काल में चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा के यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने 'सौरसेनाई' (शौरसेनी) जाति में जो 'जोबेरीज' (यमुना) नदी के किनारे बसती थी और 'मेथोरा' (मथुरा) और क्लीसोबोरा (कृष्णपुर) जिसके प्रधान नगर थे, हेराक्लीज (कृष्ण) के विशेष रूप से पूजे जाने का उल्लेख किया है। 200 ई. पू. के वेसनगर (भिलसा) के एक स्तम्भ लेख के अनुसार बैक्ट्रिया के राजदूत हेलियाडोरस ने देवाधिदेव वासुदेव की प्रतिष्ठा में गरूड़स्तम्भ का निर्माण कराया था। वह अपने को भागवत कहता था। ई.पू. पहली शती के नाणेघाट के गुहाभिलेख में अन्य देवताओं के साथ संकर्षण और वासुदेव का भी नामोल्लेख है। इसी समय का एक और शिलालेख चित्तौड़गढ़ के समीप घोसुण्डी में मिला है, जिसमें कण्ववंशी राजा सर्वतात द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर भगवान संकर्षण और वासुदेव के मन्दिर के लिए 'पूजाशिला-प्राकार' बनवाये जाने का उल्लेख है। मथुरा के एक महाक्षत्रप शोडास (ई.पू. 80-57) के समय के एक शिलालेख के अनुसार वसु नामक एक व्यक्ति ने महास्थान (जन्मस्थान मथुरा) में भगवान वासुदेव का मन्दिर बनवाया था। इन प्रमाणों से सूचित होता है कि भागवत धर्म का सबसे पहला नाम वासुदेव धर्म या वासुदेवोपासना है। भागवत नाम भी ई.पू. दूसरी-तीसरी शती में प्रचलित हो गया था। प्रारम्भ में यह उपासना-मार्ग शूरसेन (आधुनिक ब्रजप्रदेश) में बसने वाली सात्वत जाति में सीमित था, परन्तु इसका प्रचार कदाचित सात्वतों के स्थानान्तरण के फलस्वरूप ई.पू. दूसरी-तीसरी शताब्दियों में ही पश्चिम की ओर भी हो गया था तथा कुछ विदेशी (यूनानी) लोग भी इसे मानने लगे थे।[3,14,15]

दक्षिण के प्राचीन तमिल साहित्य में वासुदेव, संकर्षण तथा कृष्ण के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। इन सन्दर्भों के आधार पर अनुमान किया गया है कि उपर्युक्त सात्वत लोग, जो वैदिक पुरूवंशक एक जाति विशेष के थे, मगध के राजा जरासंध द्वारा आक्रान्ता होने के कारण कुरुपांचाल के शूरसेन प्रदेश से पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की ओर चले गये। मार्ग में इनमें से कुछ लोग पालव और उसके दक्षिण की ओर बस गये और वहीं से दक्षिण देश के सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र तथा कोंकण में फैल गये। इन्हीं में से कुछ और दक्षिण की ओर चले गये। दक्षिण के अद्रिया, अण्डार और इडैयर जातियों के लोग पशुपालक अहीर या आभीरों के समकक्ष हैं। सात्वत जाति भी पशुपालक क्षत्रियों की जाति थी। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में दक्षिण के सात्वतों द्वारा इन्द्र के अभिषेक का उल्लेख मिलता है। यह मालूम होता है कि सात्वतों का दक्षिणगमन उससे पहले हो चुका था। वे अपने साथ अपनी धार्मिक परम्पराएँ भी अवश्य लेते गये होंगे।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

साहित्यिक उल्लेख

भागवत धर्म भी प्रारम्भ में क्षत्रियों द्वारा चलाया हुआ एक अब्राह्मण उपासना-मार्ग था परन्तु कालान्तर में सम्भवत: अवैदिक और नास्तिक जैन-बौद्ध मतों का प्राबल्य देखकर ब्राह्मणों ने उसे अपना लिया और वैष्णव या नारायणीय धर्म के रूप में उसका विधिवत संघटन किया। 'महाभारत' शान्तिपर्व[5] के नारायणीय उपाख्यान में इस नवीन धर्म को वैष्णव यज्ञ कहा गया है और यज्ञ प्रधान वैदिक कर्मकाण्ड के प्रवृत्ति-मार्ग के विपरीत इसे निवृत्ति-मार्ग बताया गया है। इस वैष्णव यज्ञ में पशुवध का स्पष्ट रूप में निषेध तथा तप, सत्य, अहिंसा और इन्द्रियनिग्रह का विधान किया गया था। 'महाभारत' में ही वासुदेव को वैदिक देवता विष्णु से अभिन्न बताया गया तथा साथ ही कृष्ण को भी द्वितीय वासुदेव के रूप में उन्हीं का अवतार प्रसिद्ध किया गया। ऋग्वेद में विष्णु-सम्बन्धी जो थोड़ी-सी ऋचाएँ मिलती हैं, उनमें उनका अत्यन्त भव्य वर्णन हुआ है। वे त्रिविक्रम हैं तीन पाद-प्रक्षेपों में समग्र संसार को नाप लेते हैं[6] इसीलिए वे उरूगाय (विस्तीर्ण गतिवाले) और उरूक्रम (विस्तीर्णपाद-प्रक्षेपवाले) कहे गये हैं। उनका तीसरा पद-क्रम सबसे ऊँचा है। उनके परमपद में मधु का उत्स है। विष्णु पृथ्वी पर लोकों के निर्माता हैं, ऊर्ध्वलोक में आकाश को स्थिर करने वाले हैं तथा तीन डगों से सर्वस्व को नापने वाले हैं। ऋग्वेद में विष्णु को अजेय गोप विष्णुर्गोपा अदाभ्य:[7] भी कहा गया है। उनके परमपद में भूरिश्रृंगा चंचल गायों का निवास है।[8] उनका वह सर्वोच्च लोक गोलोक कहलाता है। यज्ञ-प्रधान ब्राह्मण-काल में विष्णु का महत्त्व बढ़ता गया। उन्हें स्वयं 'यज्ञ' की संज्ञा दी गयी। उनकी अपेक्षा वैदिक देवता अग्नि को हीन बताया गया है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में उल्लेख है, कि विष्णु ने असुरों से छीनकर समस्त पृथ्वी इन्द्र को दे दी थी। ऐतरेय ब्राह्मण[9] और 'शतपथ ब्राह्मण'[10] में भी इसी प्रकार का एक उल्लेख है। इस प्रकार सर्वाधिक शक्तिशाली वैदिक देवता इन्द्र की अपेक्षा विष्णु की महत्ता ब्राह्मण काल से ही बढ़ने लगी थी। ब्राह्मण ग्रन्थों से विष्णु के अवतारों- वामन, वराह, मत्स्य और कूर्म सम्बन्धी प्रमाण भी एकत्र किये गये हैं। जो हो, पशु-यज्ञ-विरोधी नवीन धर्म के उपास्य बनने के लिए वैदिक देवताओं में विष्णु ही सबसे अधिक उपयुक्त थे और इसीलिए 'महाभारत' में उन्हें वासुदेव से अभिन्न बताया गया तथा वासुदेवोपासकों के सात्वत धर्म को वैष्णव धर्म के नाम से प्रसिद्ध किया गया।

नारायण वासुदेव

कृष्ण मूल वासुदेव या वासुदेव से भिन्न हैं, ऐसा अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। कृष्ण सम्बन्धी वैदिक उल्लेखों- अंगिरस ऋषि, कृष्ण और कृष्सुर के उल्लेखों में उनके वासुदेव होने का कोई संकेत नहीं है।

1. छान्दोग्य उपनिषद- तेरहवें खण्ड से उन्नीसवें खण्ड तक 'छान्दोग्य उपनिषद' के देवकी पुत्र कृष्ण घोर आंगिरस के शिष्य हैं और वे गुरु से ऐसा ज्ञान उपलब्ध करते हैं, जिससे फिर कुछ भी जानने को शेष नहीं रहता तथा यज्ञ की एक ऐसी सरल रीति सीखते हैं, जिसकी दक्षिणा तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य है[11] इससे स्पष्ट विदित होता है आंगिरस गोत्र का घोर नामक ऋषि वैदिक आंगिरस का उत्तराधिकारी था। आंगिरसों में सबसे प्रमुख बृहस्पति कहे गये हैं, जिन्हें किसी समय पांचरात्र मत का ज्ञान सौंपा गया था घोर आंगिरस ने देवकी पुत्र कृष्ण को जो उपर्युक्त यज्ञ की विधि बतायी थी, वह भी भागवत यज्ञ या वैष्णव यज्ञ की ही थी, अत: देवकी-पुत्र कृष्ण या वासुदेव (कृष्ण) भागवत धर्म के आदि प्रवर्तक नहीं थे। यह बात स्वयं गीता[12] से प्रमाणित होती है कि कृष्ण से भिन्न कोई और वासुदेव पहले हो चुका था। 'महाभारत' शान्तिपर्व में वर्णित उपर्युक्त वैष्णव यज्ञ के उपास्य का असली नाम नारायण है, जिन्हें विष्णु से अभिन्न कहकर बताया गया है कि यही नारायण वासुदेव हैं और यही दुरात्मा कंस का नाश करने के लिए द्वापर और कलि युग की सन्धि में मथुरा में जन्म लेंगे। विष्णु ने कूर्म, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण का अवतार लिया और कलयुग में कल्कि अवतार लेंगे।[13]

विभिन्न काल

अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत के समय तक अध्यात्मतत्त्व के देवता नारायण, ऐतिहासिक पूज्य पुरुष वासुदेव और वैदिक देवता उरूगाय विष्णु एकाकार होकर भारत-युद्ध के कृष्ण में समन्वित होने लगे थे और नाना प्रकार से यह उद्योग होने लगा था कि कृष्ण ही एकमात्र द्वितीय वासुदेव, नारायण, हरि, भगवत और विष्णु के अवतार हैं। हरिवंश तथा अनेक पुराणों में कृष्ण के एकमात्र द्वितीय वासुदेव होने के, श्रृगाल वासुदेव और पोण्ड्र, वासुदेव सम्बन्धी आख्यान मिलते हैं। महाभारत और पुराणों में कृष्ण को सात्त्वतर्षभ कहा गया है, जिससे कृष्ण के भी वृष्णिवंशीय सात्त्वत होने की सूचना मिलती है। इस प्रकार सात्त्वतों के कुल-धर्म को महाभारत और पुराणों की सहायता से एक व्यापक लोकधर्म बनाने का सतत उद्योग किया गया। कदाचित भागवत धर्म की यह परिणति चौथी-पाँचवीं शताब्दी में गुप्त वंश के राज्यकाल में हुई। गुप्त सम्राट अपने को परम भागवत घोषित करने में गर्व का अनुभव करते थे। उन्होंने पौराणिक वैष्णव धर्म को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। फिर भी गुप्तवंश की उदार धार्मिक नीति के फलस्वरूप शैव और बौद्ध धर्म भी यथेष्ट उन्नति कर रहे थे। वैदिक ब्राह्मण धर्म का स्मार्त रूप, जिसमें विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश- इन पाँच देवताओं की पूजा विहित थी, व्यापक प्रचार पा रहा था। वैष्णव धर्म के प्रचार से ही अहिंसा और अवतारवाद के सिद्धान्त का व्यापक रूप में प्रचलन हो गया था। इस प्रकार लगभग 600 ई. पू. से 500 ई. तक भागवत धर्म के प्रथम उत्थानकाल में ही उसके प्रचार के प्रचुर साधन पौराणिक साहित्य के रूप में तैयार हो गये थे। रामायण और महाभारत की भी वैष्णव परिणति हो चुकी थी।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

भक्ति

छठी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी की लगभग समाप्ति तक उत्तर भारत में भागवत धर्म उन्नति नहीं कर सका। स्मार्त वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म में लोकरुचि को आकृष्ट करने की होड़ सी हो रही थी। इसी प्रतिस्पर्धा में बौद्ध धर्म ने एक ओर वैष्णव धर्म की अनेक बातें अपना लीं तथा दूसरी ओर लोक-विश्वासों और लोक-प्रथाओं को अपनाता हुआ वह महायान, मन्त्रयान, वज्रयान, सहजयान आदि रूपों में परिणत होता हुआ धीरे-धीरे नाम शेष हो गया। पौराणिक धर्म और शंकराचार्य के उद्योग भी बौद्ध-धर्म को नष्ट करने में धीरे-धीरे सफल होने लगे। परन्तु इस काल में दक्षिण भारत में भागवत धर्म का उत्कर्ष हो रहा था। दक्षिण के आलवार भक्तों की परम्परा नवीं शताब्दी तक अविच्छिन्न चलती रही। उनकी भक्ति में प्रपत्ति की भावना और भगवान के अनुग्रह का सबसे अधिक महत्त्व है। आलवारों की संख्या बारह मानी जाती है। इनके भावपूर्ण गीत तमिल के 'प्रबन्धम' में संग्रहीत हैं, जिन्हें तमिल वेद की संज्ञा दी जाती है। इन आलवार भक्तों में गोदा या अण्डाल नाम की एक प्रसिद्ध स्त्री भक्त भी हुई है। इन प्रपत्तिभाव प्रधान भक्तों ने विष्णु, वासुदेव या नारायण तथा उनके अवतार राम और कृष्ण के प्रति अनन्यभाव का प्रेम प्रकट किया है तथा कृष्ण और गोपियों की आनन्द-क्रीड़ाओं का तन्मयतापूर्वक वर्णन करते हुए उनके प्रति दास्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की भक्ति प्रकट की है।[16,17]

ग्रन्थ

आलवारों की भक्तिभावपूर्ण गीति-रचनाओं में केवल भक्ति के साधन पक्ष का उद्घाटन मिलता है। नवीं-दसवीं शती में तमिल प्रदेश में ही आलवारों के भक्ति आन्दोलन को वैदिक और शास्त्रीय रूप देने वाले आचार्यों का उदय हुआ। शंकर मायावाद-अद्वैतवाद के साथ भक्ति का सामंजस्य कैसे हो, यह एक विकट समस्या थी। अत: अद्वैत के स्थान पर विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया गया और मायावाद का प्रबल तर्कों के आधार पर खण्डन किया गया। सबसे पहले आचार्य रंगनाथ मुनि (824-924 ई.) हुए, जो नाथ मुनि के नाम से प्रसिद्ध हैं। लुप्तप्राय तमिल वेद[14] का उद्धार करके उन्होंने श्रीरंगम के प्रसिद्ध मन्दिर में उसके गायन की व्यवस्था की। 'योगरहस्य' और 'न्याय-तत्त्व' नामक इनके दो संस्कृत ग्रन्थ भी कहे जाते हैं, जिनमें विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन हुआ है। नाथ मुनि के पौत्र यामुनाचार्य (आलबंदार) हुए, जिन्होंने 'गीतार्थ-संग्रह, 'सिद्धित्रय', 'महापुरुष-निर्णय' और 'आगम प्रामाण्य' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना करके विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का समर्थन, मायावाद का खण्डन, विष्णु की श्रेष्ठता का प्रतिपादन तथा पांचरात्र-सिद्धान्त की वैदिक प्रामाणिकता की स्थापना की। परन्तु वैष्णव आचार्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध श्री रामानुजाचार्य (1016-1137) हुए। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'श्रीभाष्य' लिखा। इसके अतिरिक्त 'वेदार्थसंग्रह', 'वेदान्तसार', 'वेदान्तदीप', 'गद्यत्रय' और 'गीताभाष्य' की रचना करके इन्होंने शंकर अद्वैत', और भेदाभेद वादी भास्कर मत का खण्डन अपने मायाविरहित विशिष्टाद्वैत तथा उस पर आधारित प्रपत्तिपूर्ण भक्तिधर्म का प्रतिपादन किया। रामानुज द्वारा स्थापित भक्ति-धर्म श्रीवैष्णव कहा जाता है, क्योंकि विश्वास किया जाता है कि इसका प्रवर्तन स्वयं श्री लक्ष्मीनारायण के द्वारा हुआ है। लक्ष्मीनारायण इसके उपास्य देव हैं।

रामानुज की मृत्यु के सौ वर्ष के भीतर दक्षिण में एक अन्य आचार्य मध्व हुए, जिनके नाम पर माध्व मत प्रसिद्ध हुआ। मध्वाचार्य का आध्यात्मिक सिद्धान्त भेदवाद या द्वैतवाद है। भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने ब्रह्मसम्प्रदाय की स्थापना की, क्योंकि उसके मूल प्रवर्तक स्वयं ब्रह्म माने जाते हैं। मध्वाचार्य ने स्पष्ट रूप में मायावाद-अद्वैतवाद का खण्डन करके भक्ति का पथ प्रशस्त किया। दक्षिण भारत में इस भक्ति-सम्प्रदाय ने, विशेष रूप से कर्नाटक और दक्षिणी महाराष्ट्र में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार किया। बंगाल का गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय भी माध्व मत की एक शाखा कहा जाता है। मध्वाचार्य का एक नाम आनन्दतीर्थ भी था। इनके लिखे तीस ग्रन्थ कहे जाते हैं, जिनमें 'गीताभाष्य', 'ब्रह्मसूत्रभाष्य', 'अणुभाष्य', 'अनुपाख्यान' , 'दशोपनिषदभाष्य' , 'गीतातात्पर्यनिर्णय' , 'भागवततात्पर्य-निर्णय', 'महाभारततात्पर्य-निर्णय' मुख्य है।

दक्षिण के आचार्य

दक्षिण के ही एक और आचार्य निम्बार्क या निम्बादित्य प्रसिद्ध हैं। रामगोपाल भण्डारकर के अनुसार इनका समय बारहवीं शताब्दी (मृत्यु 1162 ई.) है। कुछ लोगों का विचार है कि ये इससे भी पूर्व हुए थे और इनका भक्ति-सम्प्रदाय सबसे प्राचीन है। जाति के ये तैलंग ब्राह्मण और बेलारी ज़िले के निवासी बताये जाते हैं। परन्तु दक्षिण में निम्बार्क की कोई परम्परा नहीं मिलती। इनके सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र वृन्दावन ही है तथा गोवर्धन के समीप निम्ब गाँव इनका स्थान कहा जाता है। इनका असली नाम नियमान्द था, निम्बादित्य या निम्बार्क नाम एक चमत्कार के फलस्वरूप मिला था। कहते हैं, स्वयं देवर्षि नारद ने इन्हें गोपालमन्त्र की दीक्षा देकर कृष्णोपासना का उपदेश दिया था। अपने 'वेदान्तपारिजातसौरभ' में इन्होंने बिना किसी का खण्डन किये ब्रह्मसूत्र की संक्षिप्त सृत्ति के रूप में अपने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। 'दशश्लोकी' 'श्रीकृष्णस्तवराज', 'मन्त्ररहस्यषोडशी' , 'प्रपन्नकल्पबल्ली' आदि इनकी कुछ और छोटी-छोटी रचनाएँ हैं। भक्ति के प्रचार के लिए अपने द्वैताद्वैतवाद पर आधारित 'सनकादि-सम्प्रदाय' इन्होंने स्थापित किया। इसे हंस-सम्प्रदाय, सनातन-सम्प्रदाय और देवर्षि-सम्प्रदाय भी कहते हैं।

दक्षिण के उपर्युक्त तीन आचार्यों के अतिरिक्त विष्णुस्वामी नाम के एक और आचार्य प्रसिद्ध हैं। परन्तु उनके समय, स्थान तथा धार्मिक विश्वास के सम्बन्ध में इतना अधिक मतभेद है तथा उसे दूर करने की सामग्री इतनी स्वल्प है कि उनके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से कह सकना सम्भव नहीं जान पड़ता। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी द्रविड़ देश के किसी राजा के मन्त्री के पुत्र थे। बाल्यकाल से ही उनके हृदय में धार्मिक संस्कार दृढ़ हो गये थे। स्वयं वंशीधारी किशोर श्याम ने उन्हें दर्शन देकर बताया था कि

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

निराकार रूप के अतिरिक्त मेरा साकार रूप भी होता है। मुझे प्राप्त करने का सुगम उपाय साकार की भक्ति ही है। फलत: विष्णुस्वामी ने बालकृष्ण की मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी और भक्ति का उपदेश देना प्रारम्भ किया। भक्तमाल 'भक्तमाल[15] के उल्लेख के आधार पर विष्णु स्वामी का समय 13 वीं शती अनुमान किया है, परंतु यह निर्णय बहुत मान्य नहीं कहा जा सकता। विष्णुस्वामी नाम के कम-से-कम तीन भक्तों का पता चला है। इनमें से कौन विष्णुस्वामी शुद्वाद्वैत मत के प्रतिपादक तथा भक्ति के 'रुद्रसम्प्रदाय' के संस्थापक थे, यह कहना सम्भव नहीं है। वस्तुस्थिति यह जान पड़ती है कि शुद्धाद्वैत की प्राचीनता प्रमाणित करने के लिए ही उसका सम्बन्ध विष्णुस्वामी से जोड़ा जाता है।[18]

शास्त्रीय रूप

दसवीं से तेरहवीं-चौदहवीं शती तक इस प्रकार भक्ति का आन्दोलन दक्षिण में शास्त्रीय रूप धारण करके तथा आध्यात्मिक पक्ष में दृढ़ होकर पुन: उत्तर की ओर आया और चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रबल वेग के साथ देश के विस्तृत भूभाग में महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, मध्यदेश, मगध, उत्कल, असम और वंगदेश में फैलकर व्यापक लोकधर्म बन गया। उत्तर भारत में इसका नवीन रूप में प्रचार करने वाले सबसे प्रथम और सबसे अधिक शक्तिशाली स्वामी रामानन्द हुए, जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टि से रामानुज के विशिष्टाद्वैत को ही मानते हुए भक्ति का पृथक् सम्प्रदाय स्थापित किया, जिसमें दाक्षिणात्य श्रीवैष्णवों की तरह स्पर्शास्पर्श के नियम कठोर नहीं थे। लक्ष्मीनारायण के स्थान पर उन्होंने सीताराम को उपास्य देव बनाया। रामानन्दी वैष्णव वैरागी वैष्णव कहे जाते हैं। रामानन्द की दो प्रकार की शिष्य-परम्पराएँ और थीं। एक में निम्न जातियों के लोग थे और दूसरी में सवर्ण लोग। मध्ययुग में भक्ति का प्रचार करने वाले भक्त-कवियों में एक के प्रतिनिधि कबीरदास और दूसरी के तुलसीदास हुए।

चौदहवीं-पन्दहवीं शती में कबीर, रैदास आदि निर्गुणोपासक सन्तों की भक्ति अधिक प्रबल रही, परन्तु आगे की शताब्दियों में वल्लभाचार्य (1478-1530) के शुद्धाद्वैत पर आधारित पुष्टिमार्ग, निम्बाचार्य द्वारा प्रतिपादित निम्बार्क संप्रदाय और उत्तर भारत में उनके शिष्य श्रीनिवासाचार्य, औदुम्बराचार्य, गौरमुखाचार्य और लक्ष्मण भट्ट द्वारा प्रचारित सनकादि सम्प्रदाय, मध्वाचार्य के ब्रह्म या माध्व सम्प्रदाय, गोसाई हितहरिवंश (1503) के राधावल्लभ सम्प्रदाय, स्वामी हरिदास के हरिदासी या सखी सम्प्रदाय तथा चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय ने कृष्णभक्ति-आन्दोलनों के रूप में भागवत धर्म को समय के आवश्यकतानुसार नवीन रूप दिया और समग्र लोक-जीवन को आमूल प्रभावित करके उसे नयी आशा, उमंग और क्रियात्मक शक्ति से अनुप्राणित किया। दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास ने रामभक्ति के रूप में प्रेम भक्ति और मर्यादा भक्ति का अपूर्व समन्वय करके भक्ति-धर्म को एक नवीन सामाजिक शक्ति प्रदान की। मध्ययुग में भक्ति का प्रचार करने वाले सभी सम्प्रदायों पर उनके अनुयायी भक्त कवियों ने 'श्रीमद्भागवत' ही मध्ययुगीन भागवत धर्म का अक्षय स्रोत है। वल्लभ-सम्प्रदाय में तो उसे प्रस्थानत्रयी के साथ सम्मिलित करके 'प्रस्थानचतुष्टय' नाम से भक्ति-धर्म का आकार माना गया है।

III. परिणाम

चौथी शताब्दी ईस्वी सन् में गुप्त साम्राज्य की नींव पड़ने के साथ ही भारतीय उपमहाद्वीप में एक नए युग की शुरुआत हुई जिसे गुप्त काल कहते हैं। गुप्त काल में कला, विज्ञान और साहित्य ने अत्यधिक समृद्धि हासिल की। गुप्त काल के साथ ही भारत ने मंदिर वास्तुकला एवं मूर्ति कला के उत्कृष्ट काल में प्रवेश किया। शताब्दियों के प्रयास से कला की तकनीकों को संपूर्णता मिली। गुप्त काल के पूर्व मंदिर स्थायी सामग्रियों से नहीं बनते थे। ईंट एवं पत्थर जैसी स्थायी सामग्रियों पर मंदिरों का निर्माण इसी काल की घटना है।

गुप्तकालीन मंदिरों की विशेषताएँ:

oगुप्तकालीन मंदिरों को ऊँचे चबूतरों पर बनाया जाता था जिनमें ईंट तथा पत्थर जैसी स्थायी सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था।

oआरंभिक गुप्तकालीन मंदिरों में शिखर नहीं मिलते हैं। इस काल में मदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरे पर किया जाता था जिस पर चढ़ने के लिये चारों ओर से सीढ़ियाँ बनीं होती थी। तथा मंदिरों की छत सपाट होती थी।

oगुप्तकालीन मंदिरों का गर्भगृह काफी साधारण होता था। गर्भगृह में देवताओं को स्थापित किया जाता था।

oप्रारंभिक गुप्त मंदिरों में अलंकरण नहीं मिलता है, लेकिन बाद में स्तंभों, मंदिर के दीवार के बाहरी भागों, चौखट आदि पर मूर्तियों द्वारा अलंकरण किया गया है। भीतरगाँव (कानपुर) स्थित विष्णु मंदिर नक्काशीदार है।

oगुप्तकालीन मंदिरों के प्रवेश द्वार पर मकरवाहिनी गंगा, यमुना, शंख व पद्म की आकृतियाँ बनी हैं।

oगुप्तकालीन मंदिर कला का सर्वोत्तम उदाहरण देवगढ़ का दशावतार मंदिर है जिसमें गुप्त स्थापत्य कला अपनी परिपक्व अवस्था में नज़र आती है। यह मंदिर सुंदर मूर्तियों, उड़ते हुए पक्षियों, पवित्र वृक्ष, स्वास्तिक एवं फूल-पत्तियों द्वारा अलंकृत है।

oगुप्तकालीन मंदिरों की विषय-वस्तु रामायण, महाभारत और पुराणों से ली गई है। इस काल के प्रमुख मंदिर हैं- तिगवा का विष्णु मंदिर (जबलपुर, मध्य प्रदेश), भूमरा का शिव मंदिर (नागोद, मध्य प्रदेश), नचना कुठार का पार्वती मंदिर (मध्य प्रदेश), देवगढ़ का दशवतार मंदिर (झाँसी, उत्तर प्रदेश) तथा ईंटों से निर्मित भीतरगाँव का लक्ष्मण मंदिर (कानपुर, उत्तर प्रदेश) आदि।

oगुप्त काल में कला की विविध विधाओं जैसे वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला, मृदभांड, कला आदि में अभूतपूर्ण प्रगति देखने को मिलती है। गुप्तकालीन स्थापत्य कला के सर्वोच्च उदाहरण तत्कालीन मंदिर थे। मंदिर निर्माण कला का जन्म यहीं से हुआ। इस समय के मंदिर एक ऊँचे चबूतरें पर निर्मित किए जाते थे। चबूतरे पर चढ़ने के लिए चारों ओर से सीढ़ियों का निर्माण किया जाता था। देवता की मूर्ति को गर्भगृह (Sanctuary) में स्थापित किया गया था और गर्भगृह के चारों ओर ऊपर से आच्छादित प्रदक्षिणा मार्ग का निर्माण किया

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

जाता था। गुप्तकालीन मंदिरों पर पार्श्वों पर गंगा, यमुना, शंख व पद्म की आकृतियां बनी होती थी। गुप्तकालीन मंदिरों की छतें प्रायः सपाट बनाई जाती थी पर शिखर युक्त मंदिरों के निर्माण के भी अवशेष मिले हैं।
oगुप्तकालीन मंदिर छोटी-छोटी ईटों एवं पत्थरों से बनाये जाते थे। 'भीतरगांव का मंदिर ' ईटों से ही निर्मित है।[19]

IV. निष्कर्ष

तिगवा एक छोटा-सा गाँव है, जो मध्य प्रदेश के जबलपुर ज़िले से लगभग 40 मील दूर स्थित है। यह कभी मन्दिरों का गाँव था, किंतु अब यहाँ लगभग सभी मन्दिर नष्ट हो गये हैं। तिगवां में पत्थर का बना विष्णु मन्दिर 12 फुट तथा 9 इंच वर्गाकार है। ऊपर सपाट छत है। इसका गर्भगृह आठ फुट व्यास का है। उसके समक्ष एक मण्डप है। इसके स्तम्भों के ऊपर सिंह तथा कलश की आकृतियाँ हैं। इस मन्दिर में काष्ठ शिल्पाकृतियों के उपकरण का पत्थर में अनुकरण, वास्तुशिल्प की शैशवावस्था की ओर संकेत करता है।

जैन संस्कृति का केन्द्र
तिगवां गुप्त काल में जैन सम्प्रदाय का केन्द्र था। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि कन्नौज से आए हुए एक जैन यात्री 'उभदेव' ने पार्श्वनाथ का एक मंदिर इस स्थान पर बनवाया था, जिसके अवशेष अभी तक यहाँ पर विद्यमान हैं। यह मंदिर अब हिन्दू मंदिर के समान दिखाई देता है। यहाँ के खंडहरों में कई जैन मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है।

मंदिर का वर्णन
मंदिर का वर्णन करते हुए स्वर्गीय डॉक्टर हीरालाल ने लिखा है कि "यह प्राय: डेढ़ हज़ार वर्ष प्राचीन है।" यह चपटी छतवाला पत्थर का मंदिर है। इसके गर्भगृह में नृसिंह की मूर्ति रखी हुई है। दरवाज़े की चौखट के ऊपर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। पहले ये ऊपर बनाई जाती थीं किन्तु पीछे से देहरी के निकट बनाई जाने लगीं। मंदिर के मंडप की दीवार में दशभुजी चंडी की मूर्ति खुदी है। उसके नीचे शेषशायी भगवान विष्णु की प्रतिमा उत्कीर्ण है, जिनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं।
श्री राखालदास बनर्जी के अनुसार इस मंदिर में एक वर्गाकार केन्द्रीय गर्भगृह है, जिसके सामने एक छोटा-सा मंडप है। मंडप के स्तम्भों के शीर्ष भारत-पर्सिपोलिस शैली में बने हुए हैं, जिससे यह मंदिर गुप्त काल से पूर्व का जान पड़ता है।[20]

संदर्भ

1. pg.17 : Gupta Empire at its height (5th-6th centuries ce) Places connected with the development of Mahayana Buddhism Places connected with the development of Tantric Buddhism Buddhist university monasteries.Ganeri, Anita (2007). Buddhism. Internet Archive. London : Franklin Watts. पृ॰ 17. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-7496-6979-9.
2. ↑ Turchin, Peter; Adams, Jonathan M.; Hall, Thomas D (December 2006). "East-West Orientation of Historical Empires". Journal of World-Systems Research. 12 (2): 223. आइ॰एस॰एस॰एन॰ 1076-156X. डीओआइ:10.5195/JWSR.2006.369.
3. ↑ Taagepera, Rein (1979). "Size and Duration of Empires: Growth-Decline Curves, 600 B.C. to 600 A.D". Social Science History. 3 (3/4): 121. JSTOR 1170959. डीओआइ:10.2307/1170959.
4. ↑ "Gupta Dynasty – MSN Encarta".। Archived 2009-10-29 at the वेबैक मशीन "संग्रहीत प्रति". मूल से 29 अक्तूबर 2009 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 7 फ़रवरी 2019.
5. ↑ N. Jayapalan, History of India, Vol. I, (Atlantic Publishers, 2001), 130.
6. ↑ Jha, D.N. (2002). Ancient India in Historical Outline. Delhi: Manohar Publishers and Distributors. पपृ॰ 149–73. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-7304-285-0.
7. ↑ Dilip Kumar Ganguly 1987, पृ॰ 18.
8. ↑ Tej Ram Sharma 1989, पृ॰ 43.
9. ↑ Ashvini Agrawal 1989, पृ॰ 82.
10. ↑ Tej Ram Sharma 1989, पृ॰ 42.
11. ↑ R. C. Majumdar 1981, पृ॰ 4.
12. ↑ Ashvini Agrawal 1989, पृ॰ 84.
13. ↑ Tej Ram Sharma 1989, पृ॰ 40.
14. ↑ Tej Ram Sharma 1989, पृ॰ 37.
15. ↑ Newitz, Annalee (25 January 2016). "The caste system has left its mark on Indians' genomes". Ars Technica. मूल से 8 June 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 8 June 2019.
16. ↑ Singh, Upinder (2008). A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century (अंग्रेज़ी में). Pearson Education India. पृ॰ 521. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-317-1120-0.

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.469 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 7, Issue 5, September 2020 |

17. ↑ Sankalia, Hasmukhlal Dhirajlal (1934). The University of Nālandā. B.G. Paul & co. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 9781014542144. मूल से 10 March 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 July 2017.
18. ↑ Sukumar Dutt (1988) [First published in 1962]. Buddhist Monks And Monasteries of India: Their History And Contribution To Indian Culture. George Allen and Unwin Ltd, London. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-208-0498-2. मूल से 10 March 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 July 2017.
19. ↑ Smith, Vincent Arthur (1911). A history of fine art in India and Ceylon, from the earliest times to the present day. Oxford: Clarendon Press. पपृ॰ 170–171.
20. ↑ Sahni, Daya Ram (1920). Annual Report Of The Archaeological Survey Of India 1914-15. पृ॰ 124 inscription XVI.